संस्कृत व्याख्याकारों की दृष्टि में 'योग' का स्वरूप

डॉ० सरोज बाला
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
भगतफूल सिंह महिला विश्वविद्यालय
क्षेत्रीय केन्द्र, खरल (जींद)

'योग' पद धातु पाठ के अनुसार 'युजिर् योगे'[1] तथा 'युज् समाधौ'[2] दो प्रकार से निष्पन्न माना जाता है। अनेक ग्रन्थों में 'युजिर् योगे' से निष्पन्न योग पद प्रयुक्त हुआ है। पातञ्जल योगदर्शन में जिस योग पद का उल्लेख है वह 'युज् समाधौ' धातु से निष्पन्न है।

योग का लक्षण

पतंजलि ने 'योगश्चितवृत्तिनिरोधः' सूत्र से योग का लक्षण किया है।[3] सूत्र का सामान्यतः अर्थ है – चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है चित्त त्रिगुणात्मक है। चित्त की प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ है।[4] वृत्तियाँ चित्त का परिणाम है। उक्त सूत्रगत 'निरोध' पद का अर्थ वृत्तियों का अभाव (नाश) नहीं प्रत्युत वृत्तियों का अपने अधिकरण में लीन होना है। वृत्ति निरोध चित्त की अवस्था विशेष है।[5]

वाचस्पति मिश्र के अनुसार, व्यासभाष्य के प्रथम व्याख्याकार आचार्य वाचस्पति मिश्र योग का लक्षण करते है[6] 'क्लेशकर्मविपाकाशयपरिपन्थित्वे सति चित्तवृत्तिनिरोधत्वम्' क्लेश, कर्म एवं विपाकाशय जो कि योग के विरोध तत्त्व हैं उनको उत्पन्न करने वाली चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग मानते है। उनके मत में जो क्षिप्तादि भूमियों में वृत्तियों का निरोध होता है वह क्लेशादि का विरोध न होने के कारण योग की श्रेणी में

---

1 युजिर् योगे, धा०पा० 7/7
2 युज् समाधौ, धा०पा० 4/64
3 यो०सू० 1/2
4 प्रमाणविपर्यविकल्पनिद्रास्मृतयः – यो०सू० 1/6
5 वृत्तयस्तासां निरोधस्तासां लयाख्योऽधिकरणस्यैवावस्थाविशेषः अभावस्यास्मन्मतेऽधिकरणावस्थाविशेष–रूपत्वात् – यो०वा० पृ० 12
6 त०वै० पृ० 11

नहीं गिना जा सकता, साथ ही सम्प्रज्ञात समाधि में भी यह घट सकता है क्योंकि वहाँ क्लेश कर्मादि की उत्पादिका राजस एवं तामस वृत्तियों का निरोध हो जाता है और विवेकख्याति रूप सात्विक वृत्ति अवशिष्ट रहती है, यह वृत्ति योग की बाधिका न होकर साधिका वृत्ति ही है क्योंकि उसके उदित होने के परिणामस्वरूप ही अविद्यादि क्लिष्ट वृत्तियों का क्षय होता है।

विज्ञानभिक्षु योग लक्षण के इस सूत्र के साथ अग्रिम सूत्र को सम्मिलित कर अर्थ करते है, उनके अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध जोकि द्रष्टा को वास्तविक स्वरूप में अवस्थित कराने का हेतु हो वही योग कहा जा सकता है अन्य नहीं[7] क्योंकि क्षिप्त, मूढ़ एवं विक्षिप्त अवस्थाओं में होने वाला वृत्तिनिरोध स्वरूपास्थिति का हेतु नहीं होता अतः उसमें अतिव्याप्ति की शंका करना व्यर्थ है एवं सम्प्रज्ञात समाधि काल में जो वृत्तियों का निरोध है वह स्वरूपावस्थिति में परम्परया सहायक है अतः वहाँ यह लक्षण घटित हो जाता है।

योग के भेद

चित्तवृत्ति का निरोध रूप यह योग दो प्रकार का होता है – सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात।

सम्प्रज्ञात

दर्पण में दर्शक को अपनी मुखाकृति ठीक–ठीक दिखलाई दे इसके लिए दर्पण का स्वच्छ होना आवश्यक है। इसी प्रकार सूक्ष्म पदार्थो के यथार्थज्ञान के लिए चित्त का निर्मल होना अनिवार्य है।[8] इसलिए चित्तवृत्तिनिरोध रूप योग की वह अवस्था विशेष जिसमें ध्येय का सम्यक् रूप से साक्षात्कार किया जाता है, सम्प्रज्ञात योग कहा जाता

---

[7] द्रष्टृस्वरूपावस्थितिहेतुश्चित्तवृत्तिनिरोधः। यो०वा० पृ० 13

[8] चितस्य स्वत एव सर्वार्थसाक्षात्कारसामर्थ्यमस्ति विषयान्तरव्यासङ्गदोषादेव तु तत्प्रतिबद्धमतो वृत्त्यन्तरप्रतिबन्धस्य निःशेषतो विगमे स्वत एव ध्येयवस्तुसाक्षात्कारस्तद्रूपापत्त्याख्यो भवति – यो०वा० पृ० 107

है।[9] सम्प्रज्ञात योग चित्त की एकाग्रावस्था में ही सम्भव है।[10] इसमें ध्येय के साक्षात्कार का क्रम स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढना है, विज्ञानभिक्षु इस विषय में एक श्रुति को भी उद्धृत करते है।[11] उदाहरण स्वरूप धनुर्विधा की शिक्षा देते समय गुरु क्षत्रियकुमार को सर्वप्रथम स्थूल लक्षय का भेदन करने का अभ्यास कराता है। अभ्यास में परिपक्व होने पर सूक्ष्म लक्ष्यपर्यन्त बाण के गतिमय होने की विधि बताता है।[12]

सम्प्रज्ञात योग के भेद

तत्त्व साक्षात्कार के क्रम के अनुसार इस सम्प्रज्ञात योग के चार भेद माने गए है – वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत।[13] सम्प्रज्ञात योग अथवा समाधि के चारों भेद अथवा अवस्थाएँ ही योगसूत्र एवं भाष्य के टीकाकारों ने स्वीकार की है। उनका मतभेद समापत्ति की संख्या को लेकर है न कि सम्प्रज्ञात समाधि के भेद के विषय में। समापत्ति एवं समाधि में भेद न कर पाने के कारण ही अनेक आलोचकों ने सम्प्रज्ञात योग के भेदों की संख्या के विषय में मतभेद प्रदर्शित किया है तथा उसके ही छः अथवा आठ भेदों को गिनाया है। समाधि एवं समापत्ति के अन्तर को खितर्कानुगत में ही समाहित कर लिया है।

वितर्कानुगत

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात में साधक स्थूल विषय को आलम्बन बनाकर उस पर चित्त को केन्द्रित करता है।[14] यह वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात योग स्थूल पदार्थ विषयक है इतना दोनों टीकाकार स्वीकार करते है।

---

[9] सम्यक् प्रज्ञायते साक्षात्क्रियते ध्येयमस्मिन्निरोधविशेषरूपे योग इति संप्रज्ञातो योगः। यो०वा०, पृ० 7
[10] Samkhya amd Advaita Vedanta : A Comparative Study, p. 102
[11] यो०वा०, पृ० 57
[12] त०वै०, पृ० 52
[13] यो०सू०, 1/17
[14] व्या०भा०, पृ० 54

स्थूल के विषय में वाचस्पतिमिश्र एवं विज्ञानभिक्षु का मतभेद

'स्थूल' पदार्थ कौन–कौन से हैं इस विषय में मतभेद है। वाचस्पति मिश्र स्थूल के अन्तर्गत मात्र पंचमहाभूतों से निर्मित भगवत्प्रतिमादि को ही मानते है।[15] जबकि विज्ञानभिक्षु स्थूल से तात्पर्य 'केवल विकृति' मानते हुए पंचमहाभूतो के साथ–साथ इन्द्रियों को भी इसके अन्तर्गत मानते है।[16]

विषय के सम्बन्ध में दोनों टीकाकारों का जो मतभेद दिखाया गया है। उनमें से वाचस्पति मिश्र का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है प्रायः स्थूल उन्हीं पदार्थो को कहा जाता है जो कि इन्द्रिय गोचर हो। इन्द्रियाँ इन्द्रिय गोचर न होने के कारण स्थूल पदार्थो के अन्तर्गत नहीं मानी जा सकती साथ ही दूसरे दृष्टिकोण से भी इन्द्रियों का यहाँ ग्रहण किया जाना उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि योग की प्रारम्भिक अवस्था वितर्कानुगत है और साधक उस दशा में इतना समर्थ नहीं होता कि वह सामान्य इन्द्रियों से गोचर न होने वाली इन इन्द्रियों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। मेरे विचार में जिस दशा का वर्णन उन्होंने किया है वह स्थिति तो तद्विषयक धारणा अथवा ध्यान की दशा में आंशिक रूप में भले ही सही हो परन्तु समाधि में जो साधक को उस पदार्थ का साक्षात्कार होता है वह निश्चित ही सामान्य ज्ञान से भिन्न ज्ञान का ही फल है।

विचारानुगत सम्प्रज्ञातयोग

इसमें साधक को सूक्ष्म पदार्थों का अपरोक्षात्मक ज्ञान होता है। सूक्ष्म पदार्थों का देश, काल तथा निमित्त से अवच्छिन्न और अनवच्छिन्न ज्ञान होने के कारण विचारानुगतयोग दो प्रकार का है।

सविचार

---

15 त०वै०, पृ० 54
16 यो०वा०, पृ० 55

उक्त योग कार्यकारणभाव के विचार से युक्त होता है। सविचार में देश, काल आदि विशेषण से रहित विशुद्ध भूतसूक्ष्म का ज्ञान नहीं हो पाता है सविचार में साक्षात्कृत अन्य सूक्ष्म पदार्थ भी देशादि से अवच्छिन होते है।[17]

निर्विचार

इस अवस्था में ध्येय सूक्ष्म विषय का सार्वकालिक सार्वदेशिक तथा सर्वधर्मयुक्त ज्ञान होता है।[18]

आनन्दानुगत सम्प्रज्ञातयोग

सम्प्रज्ञात की वितर्क और विचार अवस्थाओं के विजित होने पर साधक आनन्दानुगत अवस्था में प्रवेश करता है। यह ग्रहणसमापत्ति कही जाती है।

अस्मितानुगत सम्प्रज्ञातयोग

सम्प्रज्ञात योग की यह अन्तिम अवस्था है – अस्मिता। यहाँ पुरुष का साक्षात्कार होता है।

यहाँ एक शङ्का उपस्थित होती है – माना कि सम्प्रज्ञातयोग में पदार्थगत अशेषविशेष का साक्षात्कार कराने की योग्यता है; लेकिन शिष्यगण गुरु द्वारा साक्षात्कृत पदार्थगत अशेषविशेष को गुरुपदेश से ही जान लेगे शिष्यों के लिए योग साधना व्यर्थ है। उत्तर है, जैसे इक्षु और क्षीर के माधुर्य को शब्द के द्वारा नहीं बतलाया जा सकता, इसी प्रकार गुरु पदार्थ के अशेष–विशेष को शब्द के द्वारा स्पष्ट नहीं कर सकता। यह स्वानुभववेद्य है।[19] स्मृतिग्रन्थों में भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है।[20]

सम्प्रज्ञात योग की चारों अवस्थाओं में ध्यान का आलम्बन एक ही पदार्थ रहता है। अवस्थाभेद से आलम्बन परिवर्तित नहीं होता है। अन्यथा पूर्व–पूर्व उपासना के त्याग

---

[17] रा०सा०, पृ० 17
[18] यो०वा०, पृ० 120
[19] यो०वा०, पृ० 112
[20] यो०वा०, पृ० 112

की आपत्ति आएगी और चित्त का चांचल्य बढ़ेगा अतः सम्प्रज्ञातयोग की चारों अवस्थाएँ एक ही आलम्बन में क्रमशः अभ्यसनीय है।[21]

असम्प्रज्ञात योग

विवेकख्याति रूप सात्त्विक वृत्ति के भी निरुद्ध हो जाने पर समस्त वृत्तियों से रहित चित्त में मात्र संस्कार ही अवशिष्ट रह जाते है।[22] ज्ञान कराने वाली वृत्ति का अभाव होने के कारण तथा ध्येय के रूप में कुछ भी न रहने के कारण इस योग में कुछ भी जाना नहीं जाता। अतः 'न तत्र किञ्चित्संप्रज्ञायत इत्यसंप्रज्ञातः'[23] इस व्युत्पत्ति के आधार पर ही इसे असंप्रज्ञात योग कहा जाता है।

इसे भाष्यकार ने निर्बिज समाधि की संज्ञा दी है। जिस समाधि में यह विद्यमान रहता हैं कि बीज क्या है और जिसमें बीज विद्यमान नहीं रहता है वह असम्प्रज्ञात योग कहा जाता है।

असम्प्रज्ञात योग के भेद

भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय के भेद से इसके दो भेद माने गये है।[24]

उपायप्रत्ययक

उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञातयोग वह है, जो शास्त्रोक्त उपायो के विधिवत् अनुष्ठान से साधारण मनुष्य अथवा मुमुक्षुओं को इहलोक में सिद्ध होता है। इसके लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा ये पाँच उपाय बतलाए गए है।

भवप्रत्यय

विदेह एवं प्रकृतिलयों को होने वाले योग को होने वाले योग को भवप्रत्यय कहा गया है।[25] विदेह और प्रकृतिलय जो साधक भूत अथवा इन्द्रियों में से किसी एक को

---

21 यो०वा०, पृ० 52
22 यो०सू०, 1/18
23 व्या०भा०, पृ० 10
24 व्या०भा०, पृ० 59
25 यो०सू० 1/19

आत्मा समझ कर उसी की उपासना करते रहते है वे मरणोपरान्त उन उपास्य पदार्थों में ही लीन हो जाते है। क्योंकि वे स्थूल देह से रहित होकर मात्र संस्कार–शेष चित्त के द्वारा ही कैवल्य पद के समान अनुभव करते है। अतः उन्हें विदेह कहते है।[26] मात्र प्रकृति अथवा ईश्वर तत्त्व की उपासना करने वाले को ही प्रकृतिलय माना जाता है।[27]

अतः सम्यक्ज्ञानपूर्वक होने वाले चित्तवृत्ति निरोध से जिस असम्प्रज्ञात दशा का आविर्भाव होता है, उसकी तुलना ज्ञान के अनुदयकालीन भवप्रत्यय योग से नहीं हो सकती है। इसलिए अविद्यानिमित्तक भवप्रत्ययक निरोध को कैवल्य का हेतु न मानने वाले व्याख्याकार वाचस्पति मिश्र आदि का पक्ष युक्तियुक्त है।

असम्प्रज्ञातयोग की साधना द्वारा जब चित्त निर्वृत्तक हो जाता है उस समय वृत्तिशून्य बुद्धि में पुरुष का प्रतिबिम्ब संक्रान्त नहीं होता है। फलस्वरूप पुरुष में अवस्थित रह जाता है। साधक की यह अवस्था जीवन्मुक्ति कही जाती है। जब प्रारब्धकर्मो का भी फलोपभोग द्वारा क्षय हो जाता है, तब देहपात के पश्चात् साधक विदेहमुक्त कहलाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार / प्रकाशन
1	तत्त्ववैशारदी	शिवदत्तशर्मा, आनन्दाश्रममुद्रणालय, पूना
2	योगवार्तिक	दामोदरशास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3	योगसूत्र	दामोदरशास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

[26] त०वै०, पृ० 56–60
[27] यो०वा०, पृ० 61